बिहार राज्य एवं अन्य **1959**

बनाम **15 अप्रैल**

श्रीमती चारुसीला दासी

(एस. आर. दास, मुख्य न्यायाधीश, एस. के. दास, पी. बी. गजेन्द्रगडकर,

के. एन. वांचू तथा एम. हिदायतुल्लाह, न्यायमूर्तिगण)

हिन्दू धार्मिक न्यास – बिहार राज्य के बाहर स्थित न्यास से संबंधित संपत्ति – ऐसी संपत्ति पर बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम की प्रयोज्यता – विधायी क्षमता – अधिनियम की संवैधानिक वैधता – निजी न्यासों पर प्रयोज्यता – बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 (बिहार 1951 का 1), धारा 1(2), 2(1), 3 – भारत का संविधान, अनुच्छेद 245, 246, सप्तम अनुसूची, सूची III, मद 28।

विलेख की व्याख्या – हिन्दू धार्मिक न्यास – निजी अथवा सार्वजनिक।

उत्तरदाता द्वारा 11 मार्च, 1938 को, जब वह विलेख में उल्लिखित अनुसूचियों में वर्णित संपत्तियों के संबंध में बिहार राज्य के डी में निवास कर रही थी, एक न्यास विलेख निष्पादित किया गया, जिनमें से कुछ संपत्तियाँ बिहार राज्य के बाहर स्थित थीं। न्यास विलेख में उसने स्वयं को न्यासकर्ता के रूप में वर्णित किया, तथा उसमें यह अभिलिखित था कि न्यासकर्ता ने अपने घर में ईश्वर श्रीगोपाल नामक देवता की स्थापना की थी और तब से नियमित रूप से उक्त देवता की उपासना तथा पूजा करती रही थी; तथा यह कि वह अपने दिवंगत पुत्र की स्मृति में नामित किए जाने हेतु एक नाट मंदिर का निर्माण करा रही थी। उक्त अभिलेखों से यह भी प्रकट होता है कि न्यासकर्ता ने दो मंदिरों (जुगल मंदिर) के निर्माण का प्रावधान किया था, जिनमें से एक में श्रीगोपाल देवता तथा अन्य देवताओं की स्थापना की जानी थी, और दूसरे में उसके गुरु की संगमरमर प्रतिमा स्थापित की जानी थी; तथा यह कि मंदिर समिति में उस समय का

जुगल मंदिर शेबैत तथा छह धर्मनिष्ठ हिन्दू सम्मिलित होंगे, जो डी के निवासी होंगे और जिनमें कम-से-कम चार बंगाली होंगे। न्यास विलेख की एक धारा में यह अभिलिखित था :- "जुगल मंदिर में देवताओं एवं प्रतिमा को अर्पित किए जाने वाले 'प्रणामी' तथा परिलाभ श्रीमती चारुसीला न्यास संपदा का भाग होंगे और न तो शेबैत तथा न ही कोई अन्य व्यक्ति उनमें अथवा उन पर कोई हित अथवा दावा रखेगा।"

न्यास विलेख में निःशुल्क अन्न एवं जल वितरण तथा देवता एवं प्रतिमा के लिए संपादित किए जाने वाले उत्सवों से संबंधित धार्मिक अनुष्ठानों के संबंध में किए गए प्रावधान, जो ऐसे सुविख्यात उत्सव थे जिनमें सामान्यतः हिन्दू समुदाय के सदस्य भाग लेते थे, इस आशय के थे कि उन्हें बड़े पैमाने पर संपादित किया जाए ताकि बड़ी संख्या में व्यक्ति उनमें भाग ले सकें। न्यास विलेख में हिन्दू महिलाओं के लिए एक चिकित्सालय तथा किसी भी धर्म अथवा मत के रोगियों के लिए एक परोपकारी औषधालय की स्थापना का भी प्रावधान था।

बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 के प्रवृत्त होने के पश्चात्, बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष ने अधिनियम की धारा 59 तथा 70 के अधीन उत्तरदाता के विरुद्ध उक्त न्यास के संबंध में यह मानते हुए कार्यवाही प्रारंभ की कि वह एक सार्वजनिक न्यास है जिस पर अधिनियम लागू होता है। उत्तरदाता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की, जिसमें उसने यह प्रार्थना की कि बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड द्वारा उसके विरुद्ध की गई कार्यवाही को अभिखंडित करने हेतु निम्नलिखित आधारों पर एक रिट अथवा आदेश निर्गत किया जाए, कि (1) 11 मार्च, 1938 दिनांकित न्यास विलेख एक निजी बंदोबस्ती था जो एक पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु सृजित किया गया था जिसमें जनसाधारण का कोई हित नहीं था, (2) अधिनियम निजी न्यासों पर लागू नहीं होता, (3) अधिनियम संविधान के प्रतिकूल है क्योंकि इसके विभिन्न प्रावधान

संविधान के भाग III के अधीन उसे नागरिक के रूप में प्रदत्त अधिकारों में हस्तक्षेप करते हैं, तथा (4) किसी भी स्थिति में, प्रश्नगत न्यास विलेख पर अधिनियम लागू नहीं होता क्योंकि कुछ संपत्तियाँ बिहार राज्य के बाहर स्थित थीं।

अभिनिर्धारित : (1) यह कि 11 मार्च, 1938 दिनांकित न्यास विलेख की यथार्थ व्याख्या पर उसने सार्वजनिक प्रकृति का एक धार्मिक एवं परोपकारी न्यास सृजित किया था।

देवकी नन्दन बनाम मुरलीधर, [1956] एस.सी.आर. 756, पर विचार किया गया।

चारुसीला दासी, के संदर्भ में आई.एल.आर. [1946] 1 कैल. 473, का स्पष्टीकरण किया गया।

यह निर्धारित करने के संबंध में कि क्या न्यास एक सार्वजनिक न्यास था, प्रासंगिक विचारों में से एक यह होगा कि क्या न्यास विलेख द्वारा जनसाधारण अथवा जनसाधारण के किसी ऐसे वर्ग को, जो किसी विशिष्ट वर्णन का हो, पूजा करने का कोई अधिकार प्रदान किया गया है।

(2) यह कि अधिनियम निजी बंदोबस्तियों पर लागू नहीं होता।

महंत राम सरूप दासजी बनाम एस. पी. साही, [1959] सप्ली. 2 एस.सी.आर. 583, का अनुसरण किया गया।

(3) यह कि अधिनियम के प्रावधान संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार का न तो अपहरण करते हैं और न ही उसका संक्षेपण करते हैं।

महंत मोती दास बनाम एस. पी. साही, [1959] सप्ली. 2 एस.सी.आर. 563, का अनुसरण किया गया।

(4) यह कि अधिनियम की धारा 3 अधिनियम को उन सभी सार्वजनिक धार्मिक एवं परोपकारी संस्थाओं पर लागू करती है, जो अधिनियम की धारा 2(1) में निहित परिभाषा उपबंध

के अर्थ के अंतर्गत आती हैं, जो बिहार राज्य में स्थित हैं और जिनकी संपत्ति का कोई भाग उस राज्य में है।

(5) यह कि जहाँ न्यास बिहार में स्थित है वहाँ राज्य को उस पर तथा उसके न्यासियों अथवा उनके सेवकों एवं अभिकर्ताओं पर, जिन्हें न्यास का प्रशासन करने हेतु बिहार में होना आवश्यक है, विधायी शक्ति प्राप्त है, और चूँकि अधिनियम का उद्देश्य बिहार राज्य में हिन्दू धार्मिक न्यासों के बेहतर प्रशासन तथा उनसे संबंधित संपत्तियों के संरक्षण का उपबंध करना है, इसलिए राज्य के बाहर स्थित न्यास की संपत्ति के संबंध में यह उद्देश्य न्यासियों पर व्यक्तिशः नियंत्रण का प्रयोग करके प्राप्त किया जाता है, और वास्तव में अधिनियम के बाह्य-प्रादेशिक प्रवर्तन का कोई प्रश्न नहीं उठता।

(6) यह कि, वर्तमान मामले में, यह परिस्थिति कि वे मंदिर जहाँ देवताओं की स्थापना की गई है बिहार में स्थित हैं तथा यह कि चिकित्सालय और परोपकारी औषधालय बिहार में स्थित हिन्दू जनसाधारण के लाभ हेतु बिहार में स्थापित किए जाने हैं, बिहार की विधायिका को ऐसे न्यास के संबंध में विधि बनाने में सक्षम करने के लिए पर्याप्त प्रादेशिक संबंध प्रदान करती है।

टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य, [1958] एस.सी.आर. 1355 तथा *बम्बई राज्य बनाम आर. एम. डी. चमारबागवाला*, [1957] एस.सी.आर. 874, पर अवलंबन किया गया।

सरदार गुरदयाल सिंह बनाम फरीदकोट के राजा, (1894) एल.आर. 21 आई.ए. 171, विभेदित किया गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1955 की दीवानी अपील संख्या 230

5 अक्टूबर, 1953 दिनांकित पटना उच्च न्यायालय के एम. जे. सी. संख्या 128/1953 में पारित निर्णय एवं आदेश से उद्भुत अपील।

बिहार राज्य के लिए *महाबीर प्रसाद, महाधिवक्ता* तथा अपीलकर्ताओं के लिए, *आर. सी. प्रसाद।*

उत्तरदाता के लिए *एन. सी. चटर्जी तथा पी. के. चटर्जी।*

15 अप्रैल 1959, न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा प्रदत्त किया गया।

एस. के. दास, न्यायमूर्ति – यह अपील श्रीमती चारुसीला न्यास के नाम से ज्ञात एक न्यास तथा उससे संबंधित संपत्तियों से संबंधित है। 5 अक्टूबर, 1953 दिनांकित अपने निर्णय एवं आदेश द्वारा पटना उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत न्यास एक निजी न्यास है जो एक पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु सृजित किया गया है जिसमें जनसाधारण का कोई हित नहीं है और, इसलिए, बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 (बिहार 1951 का 1), जिसे इसके पश्चात् अधिनियम कहा गया है, के प्रावधान उस पर लागू नहीं होते। तदनुसार, उसने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उसके समक्ष दायर विनिर्दिष्ट आदेश याचिका को स्वीकृत किया गया तथा अधिनियम की धारा 59 एवं 70 के अधीन उत्तरदाता के विरुद्ध की गई कार्यवाही को अभिखंडित कर दिया। बिहार राज्य, बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष तथा उक्त बोर्ड के अधीक्षक, जो अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका में उत्तरदाता थे, हमारे समक्ष अपीलकर्ता हैं।

प्रश्नगत न्यास 11 मार्च, 1938 को निष्पादित एक न्यास विलेख द्वारा सृजित किया गया था। श्रीमती चारुसीला दासी, कलकत्ता के जोराबागान स्ट्रीट संख्या 3 के अक्षय कुमार घोष की विधवा हैं। वह प्रासंगिक समय पर बिहार राज्य के संथाल परगना जिला स्थित देवघर में चारु निवास नामक एक भवन में निवास करती थीं। न्यास विलेख में उन्होंने स्वयं को न्यासकर्ता के रूप में

वर्णित किया, जो अनुसूची ख, ग तथा घ में वर्णित कुछ संपत्तियों की हकदार तथा कब्जाधारी थीं। अनुसूची ख की संपत्ति में देवघर नगर के करणीबाद मोहल्ला में स्थित तीन बीघा से अधिक भूमि तथा उस पर स्थित भवन एवं संरचनाएँ सम्मिलित थीं; अनुसूची ग की संपत्ति चारु निवास थी, जो देवघर के करणीबाद में ही स्थित थी; तथा अनुसूची घ की संपत्तियों में कलकत्ता स्थित अनेक मकान तथा कुछ भूमि सम्मिलित थीं, जिनका कुल मूल्य लगभग 8,50,000/- रुपये था। बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड के अधीक्षक को प्रेषित एक पश्चातवर्ती पत्र में, श्रीमती चारुसीला दासी की ओर से यह कहा गया था कि समस्त संपत्तियों से कुल वार्षिक आय लगभग 87,839/- रुपये थी। न्यास विलेख में यह अभिलिखित था कि न्यासकर्ता ने अपने घर में ईश्वर श्रीगोपाल नामक देवता की स्थापना की थी और तब से उक्त देवता की नियमित रूप से पूजा-अर्चना तथा "पूजा" करती रही थीं; कि वह अनुसूची ख में वर्णित भूखंड पर अपने दिवंगत पुत्र द्विजेन्द्र नाथ की स्मृति में नामित किए जाने हेतु एक युगल मंदिर तथा एक नाट मंदिर (प्रवेश कक्ष) का निर्माण करा रही थीं; और वह आगे इस बात की इच्छुक थीं कि दो मंदिरों में से एक में श्रीगोपाल देवता तथा ऐसे अन्य देवता अथवा देवताओं की स्थापना करें जिन्हें वह अपने जीवनकाल में स्थापित करना चाहें, तथा दूसरे मंदिर में श्री श्री बालानंद ब्रह्मचारी की संगमरमर प्रतिमा स्थापित करें, जो उनके धार्मिक गुरु थे और जिन्हें उनके शिष्यों द्वारा दैवी पुरुष माना जाता था। न्यास विलेख में यह भी अभिलिखित था कि न्यासकर्ता करणीबाद में हिन्दू महिलाओं के लिए अपने दिवंगत पति की स्मृति में अक्षय कुमार महिला चिकित्सालय नाम से एक चिकित्सालय स्थापित करने की भी इच्छुक थीं। न्यास विलेख द्वारा न्यासकर्ता ने अनुसूची ख, ग तथा घ में वर्णित संपत्तियाँ न्यासियों को हस्तांतरित कर दीं और न्यासियों की संख्या पाँच थी, जिनमें श्रीमती चारुसीला दासी तथा उनके दिवंगत पति के दत्तक पुत्र देवी प्रसन्न घोष सम्मिलित थे; अन्य तीन न्यासी अमरेन्द्र कुमार बोस, तारा शंकर चटर्जी तथा सुरेन्द्र नाथ बर्मन

थे, किन्तु वे न्यासकर्ता के परिवार के सदस्य नहीं थे। अमरेन्द्र कुमार बोस ने न्यासी पद से त्यागपत्र दे दिया और बाद में उनके स्थान पर डॉ. शैलेन्द्र नाथ दत्त नियुक्त किए गए। न्यास विलेख के अधीन अधिरोपित न्यास निम्नलिखित थे : (1) न्यास संपदा तथा यदि कोई हो तो दानों से अधिकतम तीन लाख रुपये की लागत पर दो मंदिरों तथा नाट मंदिर के निर्माण को पूर्ण करना; (2) दो मंदिरों के निर्माण पूर्ण होने के पश्चात्, एक मंदिर में ईश्वर श्रीगोपाल देवता तथा दूसरे में श्री बालानंद ब्रह्मचारी की संगमरमर प्रतिमा स्थापित करना अथवा स्थापित कराना तथा उसके संबंध में प्रतिष्ठा समारोह एवं उत्सव आयोजित करना; (3) उपर्युक्त स्थापना समारोहों एवं उत्सवों के पश्चात्, श्रीगोपाल देवता तथा ऐसे अन्य देवताओं की, जो स्थापित किए जाएँ, दैनिक "शेबा पूजा" तथा प्रत्येक वर्ष आवधिक उत्सवों के भुगतान एवं व्यय का प्रबंध करना जिसकी राशि 13,600/- रुपये वार्षिक से अधिक न हो, तथा श्री बालानंद ब्रह्मचारी की संगमरमर प्रतिमा की दैनिक "शेबा" का भी प्रबंध करना और उनकी स्मृति में प्रति वर्ष निम्न अवसरों पर उत्सव मनाना—(क) "जन्म-तिथि" (संगमरमर प्रतिमा की स्थापना की वर्षगाँठ); (ख) "गुरुपूर्णिमा" (बंगाली माह आषाढ़ की पूर्णिमा); तथा (ग) "तिरोधान" (वह वर्षगाँठ जिस दिन श्री बालानंद ब्रह्मचारी ने देह त्याग किया) जिसकी लागत 4,500/- रुपये वार्षिक से अधिक न हो; तथा (4) देवघर में केवल हिन्दू महिलाओं के लिए अक्षय कुमार महिला चिकित्सालय नाम से एक चिकित्सालय तथा किसी भी धर्म अथवा मत के बाह्य-रोगियों के लिए उससे संबद्ध एक बाह्य परोपकारी औषधालय स्थापित करना अथवा स्थापित कराना तथा उसका संचालन एवं प्रबंधन करना और दो मंदिरों के व्यय, तथा शेबैत, न्यासियों और मंदिर समिति के सदस्यों के भत्तों के भुगतान के पश्चात् उपलब्ध एवं पर्याप्त आय में से चिकित्सालय तथा बाह्य औषधालय के लिए 12,000/- रुपये वार्षिक अथवा ऐसी अन्य राशि का भुगतान करना। यह भी अभिलिखित था कि

चिकित्सालय तथा बाह्य परोपकारी औषधालय की स्थापना का कार्य उपर्युक्त मंदिरों के निर्माण तथा देवताओं की स्थापना से पूर्व प्रारंभ नहीं किया जाएगा।

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि हमारे समक्ष दोनों पक्षों का यह मामला है कि मंदिरों तथा नाट मंदिर का निर्माण हो चुका है और उनमें देवता तथा संगमरमर की प्रतिमा स्थापित की जा चुकी है; किन्तु न तो चिकित्सालय और न ही परोपकारी औषधालय का अभी तक निर्माण हुआ है। न्यासियों की शक्तियाँ, कृत्य तथा कर्तव्य भी विलेख में उल्लिखित किए गए थे और अनुसूची क में न्यासियों की वार्षिक साधारण बैठकों, विशेष बैठकों तथा साधारण बैठकों के आयोजन हेतु विस्तृत नियम निर्धारित किए गए थे। इन विवरणों का हम आगे उल्लेख करेंगे।

27 अक्टूबर, 1952 को, बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड, पटना के अधीक्षक ने अधिनियम की धारा 59 के अधीन श्रीमती चारुसीला दासी को प्रश्नगत न्यास के संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु सूचना पत्र प्रेषित किया। श्रीमती चारुसीला दासी ने उत्तर में कहा कि प्रश्नगत न्यास एक निजी बंदोबस्ती है जो एक पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु सृजित की गई है जिसमें जनसाधारण का कोई हित नहीं है और इसलिए अधिनियम उस पर लागू नहीं होता। 5 जनवरी, 1953 को, अधीक्षक ने पुनः श्रीमती चारुसीला दासी को पत्र लिखकर सूचित किया कि बोर्ड यह नहीं मानता कि न्यास निजी न्यास है और इसलिए अधिनियम उस पर लागू होता है। इसके पश्चात् श्रीमती चारुसीला दासी के सॉलिसिटर तथा बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष के मध्य और पत्राचार हुआ। तथापि, उक्त पत्राचार से विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकला और 5 फरवरी, 1953 को धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष ने एक सूचना पत्र में कहा कि उन्हें अधिनियम की धारा 70 के अधीन उक्त न्यास के संबंध में शुल्क निर्धारण करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। अंततः, 6 अप्रैल, 1953 को श्रीमती चारुसीला दासी ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय

के समक्ष एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की जिसमें उन्होंने प्रार्थना की कि बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड द्वारा उनके विरुद्ध की गई कार्यवाही को अभिखंडित करने हेतु एक रिट अथवा आदेश निर्गत किया जाए, इस आधार पर कि (क) प्रश्नगत न्यास एक निजी न्यास है जिस पर अधिनियम लागू नहीं होता, तथा (ख) अधिनियम संविधान के प्रतिकूल है क्योंकि इसके विभिन्न प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन उन्हें नागरिक के रूप में प्रदत्त अधिकारों में हस्तक्षेप करते हैं।

इस याचिका का बिहार राज्य तथा बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड द्वारा प्रतिवाद किया गया, यद्यपि उनमें से किसी के द्वारा भी कोई शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया। न्यास विलेख की व्याख्या के आधार पर उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रश्नगत न्यास पूर्णतः निजी स्वरूप का है, जो एक पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु सृजित किया गया है जिसमें जनसाधारण का कोई हित नहीं है, और इस दृष्टिकोण से उसने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम तथा उसके प्रावधान उस पर लागू नहीं होते। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने याचिका स्वीकृत की और अधिनियम की धारा 59 तथा 70 के अधीन कार्यवाही को अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण रिट की प्रकृति की रिट तथा बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड को प्रश्नगत न्यास के संबंध में श्रीमती चारुसीला दासी के विरुद्ध आगे की कार्यवाही करने से निरुद्ध करते हुए प्रतिषेध रिट की प्रकृति की रिट निर्गत की। तत्पश्चात् अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय से यह प्रमाण-पत्र प्राप्त किया कि वाद संविधान के अनुच्छेद 133 की अपेक्षाओं को पूर्ण करता है। वर्तमान अपील उक्त प्रमाण-पत्र के अनुसरण में दायर की गई है।

1955 की संबद्ध दीवानी अपील संख्या 225, 226, 228, 229 तथा 248 [(1)] में, जिनमें आज निर्णय सुनाया गया है, हमने उनमें अधिनियम के प्रावधानों का समग्र अवलोकन प्रस्तुत किया है तथा संविधान के भाग 3 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों के संदर्भ में उन प्रावधानों की संवैधानिक

वैधता के प्रश्न पर भी विचार किया है। हमने उनमें अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम के प्रावधान उस भाग द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार का न तो हनन करते हैं और न ही उसका संक्षेपण करते हैं। 1955 की दीवानी अपील संख्या 343[(1)] में, जिसमें आज निर्णय सुनाया गया है, हमने अधिनियम की धारा 2(1) में निहित परिभाषा उपबंध पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अधिनियम निजी बंदोबस्तियों पर लागू नहीं होता, तथा उसमें हिन्दू विधि के अधीन निजी और सार्वजनिक धार्मिक न्यासों के मध्य मूलभूत भेद का भी स्पष्टीकरण किया है। हम उन दोनों निर्णयों में कही गई बातों की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते; किन्तु उनमें की गई टिप्पणियों के आलोक में, इस अपील में निर्णय हेतु निम्नलिखित दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं—(1) क्या 11 मार्च, 1938 दिनांकित न्यास विलेख की यथार्थ व्याख्या पर चारुसीला न्यास एक निजी न्यास है जो एक पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु सृजित की गई है जिसमें जनसाधारण का कोई हित नहीं है, जैसा कि उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है; तथा (2) यदि प्रथम प्रश्न का उत्तर नकारात्मक हो, तो क्या अधिनियम अपनी धारा 3 के कारण उन न्यास संपत्तियों पर लागू होता है जो बिहार राज्य के बाहर स्थित हैं।

अब हम इन दोनों प्रश्नों पर उसी क्रम में विचार एवं निर्णय करने के लिए अग्रसर होते हैं जिस क्रम में हमने उन्हें व्यक्त किया है। अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि न्यास विलेख की यथार्थ व्याख्या पर चारुसीला न्यास को एक सार्वजनिक धार्मिक न्यास अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तियों ने प्रस्तावना के उस भाग पर बल दिया जिसमें यह कहा गया था कि न्यासकर्ता ने अपने घर में ईश्वर श्रीगोपाल नामक देवता की स्थापना की थी और उक्त देवता की नियमित रूप से पूजा करती रही थी, जो परिस्थिति (उनके अनुसार) यह प्रदर्शित करती थी कि अपनी उत्पत्ति में बंदोबस्ती एक निजी बंदोबस्ती थी जो एक पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु सृजित की गई थी जिसमें जनसाधारण का

कोई हित नहीं था, और विद्वान न्यायमूर्तियों का यह भी मत था कि उक्त देवता की दो मंदिरों में से एक में तथा श्री बालानंद ब्रह्मचारी की संगमरमर प्रतिमा की दूसरे मंदिर में स्थापना से बंदोबस्ती का स्वरूप परिवर्तित नहीं हुआ, जो निजी बंदोबस्ती ही बनी रही; उन्होंने यह मत भी व्यक्त किया कि न्यास विलेख में हिन्दू महिलाओं के लिए एक चिकित्सालय तथा किसी भी धर्म अथवा मत के रोगियों के लिए एक परोपकारी औषधालय की स्थापना का प्रावधान बंदोबस्ती के अन्य मुख्य उद्देश्यों के केवल आनुषंगिक था। उच्च न्यायालय के इन निष्कर्षों को हमारे समक्ष गंभीरतापूर्वक एवं प्रबल रूप से चुनौती दी गई है।

हम यह आदरपूर्वक कहते हैं, किन्तु हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तियों ने न्यास विलेख के अनेक महत्वपूर्ण उपबंधों को उनका समुचित महत्व प्रदान नहीं किया है और इनका विवादित प्रश्न पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। यह सत्य है कि न्यासकर्ता ने कहा था कि उसने अपने घर में ईश्वर श्रीगोपाल देवता की स्थापना की थी और ऐसी स्थापना के पश्चात् वह नियमित रूप से उस देवता की पूजा करती रही थी; यदि न्यास केवल ऐसी पारिवारिक पूजा को जारी रखने के उद्देश्य से सृजित किया गया होता, तो निःसंदेह निष्कर्ष यह होता कि बंदोबस्ती पूर्णतः निजी स्वरूप की थी जिसमें जनसाधारण का कोई हित नहीं था। किन्तु ऐसा नहीं किया गया था। न्यासकर्ता ने दो मंदिरों के निर्माण हेतु न्यास सृजित किया, जिनमें से एक में ईश्वर श्रीगोपाल देवता तथा दूसरे में उसके गुरु की संगमरमर प्रतिमा स्थापित की जानी थी; न्यासियों में ऐसे व्यक्ति सम्मिलित थे जिनमें से तीन परिवार से बाहरी थे, यद्यपि न्यासकर्ता ने अपने लिए यह शक्ति सुरक्षित रखी थी कि वह धर्म परिवर्तन आदि के कारण कदाचार होने पर अपने पूर्ण विवेकाधिकार से किसी एक अथवा अधिक न्यासियों को पद से हटा सके। प्रासंगिक विचारों में से एक यह है कि क्या न्यास विलेख द्वारा जनसाधारण अथवा जनसाधारण के किसी

ऐसे वर्ग को, जो किसी विशिष्ट वर्णन का हो, पूजा का कोई अधिकार प्रदान किया गया है। न्यास विलेख के एक उपबंध में यह कहा गया है :

"जुगल मंदिर में देवताओं एवं प्रतिमा को अर्पित किए जाने वाले 'प्रणामी' तथा परिलाभ श्रीमती चारुसीला न्यास संपदा का भाग होंगे और न तो शेबैत तथा न ही कोई अन्य व्यक्ति उनमें अथवा उन पर कोई हित अथवा दावा रखेगा।"

यहाँ तक कि न्यास समिति की संरचना भी ऐसी है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि बंदोबस्ती मात्र निजी बंदोबस्ती नहीं है। न्यास विलेख में कहा गया है—

"रिक्ति को भरते समय न्यासी यह सुनिश्चित करेंगे कि न्यासी मंडल में, यदि उपलब्ध हो, एक ऐसा व्यक्ति हो जो न्यासकर्ता के दिवंगत पति अक्षय कुमार घोष का ज्येष्ठतम प्रत्यक्ष पुरुष वंशज हो, जो न्यासी के रूप में कार्य करने के लिए पात्र, इच्छुक एवं सक्षम हो; दूसरा ऐसा व्यक्ति हो जो देवघर में पवित्र स्मृति वाले उक्त श्री श्री बालानंदजी ब्रह्मचारी महाराज द्वारा सृजित श्री श्री बालानंद न्यास का न्यासी हो; तथा तीसरा ऐसा हो जो श्री श्री बालानंद संप्रदाय का शिष्य हो, अर्थात् उक्त पवित्र स्मृति वाले श्री श्री बालानंद ब्रह्मचारी महाराज के शिष्यों में से कोई एक तथा उनके शिष्यों के शिष्य और इसी प्रकार आगे, यदि ऐसा शिष्य उक्त सृजित न्यास का न्यासी के रूप में कार्य करने के लिए इच्छुक, पात्र एवं सक्षम हो; यह सदैव उपबंधित रहेगा कि न्यासियों की पूर्ण संख्या प्रत्येक समय पाँच होगी और कोई भी व्यक्ति तब तक न्यासी बनने के लिए पात्र नहीं होगा जब तक वह वयस्क पुरुष, धर्मनिष्ठ, बंगाली हिन्दू न हो, तथा यह भी उपबंधित रहेगा कि देवघर आश्रम के श्री गोपाल के शेबैत तथा श्री बलेश्वरी देवी के शेबैत किसी भी परिस्थिति में इस विलेख के अधीन न्यासी बनने के लिए पात्र नहीं होंगे, सिवाय न्यासकर्ता के, जो अपने जीवनकाल तक न्यासी तथा शेबैत दोनों रहेंगी।"

हम यहाँ न्यास विलेख द्वारा परिकल्पित मंदिर समिति के गठन की ओर ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं। उसमें कहा गया है कि मंदिर समिति में उस समय का जुगल मंदिर शेबैत सम्मिलित होगा, जो पदेन सदस्य तथा समिति का अध्यक्ष होगा, और अन्य सदस्य, जिन्हें न्यासियों द्वारा नियुक्त अथवा नामित किया जाएगा, ऐसे छह धर्मनिष्ठ हिन्दू होंगे जो देवघर के निवासी होंगे तथा जिनमें से कम-से-कम चार बंगाली होंगे। यदि न्यास किसी पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु सृजित किया गया होता, तो इस प्रकार के प्रावधानों की अपेक्षा नहीं की जाती जिनके द्वारा मंदिर तथा "शेबा पूजा" का प्रबंधन न्यासकर्ता के परिवार के बाहर के जनसाधारण के सदस्यों में निहित किया गया है।

उपर्युक्त प्रावधानों के अतिरिक्त, चिकित्सालय तथा परोपकारी औषधालय के संबंध में स्पष्ट शब्दों में जनसाधारण के पक्ष में न्यास अधिरोपित किया गया है। यहाँ न्यास विलेख के उपबंध 8 का उद्धरण आवश्यक है। उक्त उपबंध इस प्रकार है :

"देवघर में केवल हिन्दू महिलाओं के लिए एक चिकित्सालय स्थापित करना अथवा स्थापित कराना तथा उसका संचालन एवं प्रबंधन करना, जिसे न्यासकर्ता के दिवंगत पति की स्मृति में 'अक्षय कुमार महिला चिकित्सालय' कहा जाएगा, तथा किसी भी धर्म अथवा मत के सभी बाह्य-रोगियों के लिए उससे संबद्ध एक बाह्य परोपकारी औषधालय स्थापित करना, और उक्त आय में से उक्त चिकित्सालय तथा बाह्य औषधालय के उद्देश्यों के लिए प्रतिवर्ष बारह हजार रुपये अथवा ऐसी राशि का भुगतान करना और/अथवा व्यय करना जो उपर्युक्त भारों एवं व्ययों को वहन करने तथा शेबैत, न्यासियों एवं मंदिर समिति के सदस्यों के भत्तों तथा कलकत्ता एवं देवघर स्थित कार्यालयों की स्थापना व्ययों और नीचे उल्लिखित मंदिर स्थापना व्ययों के भुगतान के पश्चात् उपलब्ध एवं पर्याप्त हो; तथापि यह उपबंधित रहेगा कि चिकित्सालय तथा बाह्य परोपकारी

औषधालय की स्थापना का कार्य न्यासियों द्वारा तब तक प्रारंभ नहीं किया जाएगा जब तक उपर्युक्त उल्लिखित मंदिर का निर्माण तथा देवताओं की स्थापना न हो जाए।"

न्यास विलेख में आगे यह कहा गया है कि महिला चिकित्सालय तथा परोपकारी औषधालय, जब तक न्यासकर्ता जीवित रहेंगी, देवघर में किराये पर लिए गए एक भवन में स्थित रहेंगे और उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्हें चारु निवास में स्थानांतरित कर वहाँ स्थापित किया जाएगा। तथापि, चारु निवास को कलकत्ता उच्च न्यायालय के आदेश से विक्रय कर दिया गया था और यह कहा गया है कि विक्रय प्राप्ति को न्यास संपदा के ऋणों एवं दायित्वों की संतुष्टि की ओर विनियोजित किया गया। चिकित्सालय तथा परोपकारी औषधालय से संबंधित न्यास विलेख का एक उपबंध इस प्रकार कहता है :

"उक्त चिकित्सालय का उद्देश्य हिन्दू महिलाओं को निःशुल्क चिकित्सीय, शल्य तथा प्रसूति संबंधी परामर्श एवं सहायता प्रदान करना तथा ऐसे नियमों और विनियमों के अनुरूप उन्हें आंतरिक रोगी के रूप में भर्ती करना होगा जो न्यासी मंडल द्वारा अथवा उसकी स्वीकृति से बनाए जाएँ। बाह्य परोपकारी चिकित्सालय का संचालन उन नियमों के अनुसार किया जाएगा जिन्हें न्यासी निर्धारित करेंगे। इन उद्देश्यों की उन्नति हेतु इसकी निधियों का व्यय आरोग्य लाभ संस्थाओं तथा अन्य समान संस्थाओं और अन्य विशिष्ट चिकित्सालयों को सदस्यता शुल्क अथवा अंशदान देने में तथा रोगियों को ऐसे संस्थानों एवं चिकित्सालयों में भेजने और वहाँ उनके भरण-पोषण में किया जा सकेगा, यह उपबंधित रहते हुए कि किसी एक वर्ष में इस प्रकार व्यय की गई राशि 1,000/- रुपये अथवा ऐसी राशि से अधिक नहीं होगी जो न्यासी समय-समय पर निर्धारित करें।"

उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायमूर्तियों ने यह मत व्यक्त किया है कि चिकित्सालय तथा परोपकारी औषधालय की स्थापना हेतु ये प्रावधान न्यास के अन्य मुख्य उद्देश्यों के केवल

आनुषंगिक अथवा सहायक हैं। अत्यंत आदर सहित, हम यह समझने में असमर्थ हैं कि न्यास विलेख में इंगित प्रकृति के चिकित्सालय तथा परोपकारी औषधालय की स्थापना को न्यास के अन्य उद्देश्यों, अर्थात् दो मंदिरों के निर्माण तथा उनमें देवताओं की स्थापना, का आनुषंगिक अथवा सहायक कैसे कहा जा सकता है। स्पष्ट एवं असंदिग्ध शब्दों में न्यास विलेख जनसाधारण के एक पर्याप्त वर्ग के पक्ष में एक पृथक् एवं स्वतंत्र न्यास अधिरोपित करता है, जिसके लाभ हेतु चिकित्सालय तथा परोपकारी औषधालय स्थापित किए जाने हैं। यह सत्य है कि चिकित्सालय तथा परोपकारी औषधालय की स्थापना का कार्य मंदिरों के निर्माण तथा देवताओं की स्थापना के पश्चात् प्रारंभ किया जाना है; तथापि, यह परिस्थिति चिकित्सालय तथा औषधालय से संबंधित न्यास को किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण अथवा केवल आनुषंगिक या सहायक नहीं बना देती। यह केवल उस समय-क्रम का निर्धारण करती है जिसमें विलेख द्वारा सृजित विभिन्न न्यासों को प्रभावी किया जाना है। उच्च न्यायालय ने प्रसाददास पाल बनाम जगन्नाथ पाल के निर्णय पर अवलंबन किया है। वह एक ऐसा वाद था जिसमें बंदोबस्ती विलेख द्वारा कुछ मकान एवं परिसर एक पारिवारिक विग्रह की "शेबा" के लिए, जो उक्त मकानों में से एक में स्थापित था, तथा निर्धनों को भोजन कराने और अन्य परोपकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समर्पित किए गए थे; देवता एक आवासीय कक्ष के भीतर स्थापित था, "शेबैतत्व" संस्थापक के परिवार के सदस्यों तक सीमित था, तथा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि देवोत्तर संपत्ति की आय बढ़े तो निर्धनों एवं छात्रों को भोजन कराना "देवशेबा" का अभिन्न अंग है, और उन परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित किया गया कि निर्धनों को भोजन कराना आदि कोई स्वतंत्र परोपकार नहीं था, बल्कि बंदोबस्ती के मुख्य उद्देश्य, अर्थात् देवता की "पूजा", का आनुषंगिक भाग था। हम यह अभिनिर्धारित करने में असमर्थ हैं कि वही विचार हमारे समक्ष स्थित न्यास पर लागू होते हैं।

देवकी नन्दन बनाम मुरलीधर में इस न्यायालय ने इस प्रश्न के निर्धारण हेतु लागू विधिक सिद्धांतों पर विचार किया था कि कोई बंदोबस्ती सार्वजनिक है अथवा निजी, और यह टिप्पणी की थी :

"निर्णीत किया जाने वाला प्रधान बिंदु यह है कि क्या संस्थापक का आशय यह था कि निर्दिष्ट व्यक्तियों को देवस्थान पर पूजा का अधिकार होगा, अथवा सामान्य जनसाधारण को, अथवा उसके किसी निर्दिष्ट वर्ग को। इस सिद्धांत के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब संपत्ति किसी पारिवारिक विग्रह की पूजा हेतु समर्पित की जाती है, तब वह निजी होती है, सार्वजनिक बंदोबस्ती नहीं, क्योंकि देवता के देवस्थान पर पूजा का अधिकार केवल परिवार के सदस्यों को हो सकता है, और वह व्यक्तियों का एक निश्चित समूह होता है। किन्तु जहाँ लाभार्थी किसी परिवार के सदस्य अथवा कोई निर्दिष्ट व्यक्ति नहीं होते, वहाँ बंदोबस्ती को केवल सार्वजनिक ही माना जा सकता है, जिसका आशय उपासकों के सामान्य वर्ग को लाभ पहुँचाना होता है।"

उस वाद में जिन तथ्यों को यह संकेत करने वाला माना गया था कि बंदोबस्ती सार्वजनिक थी, उनमें से एक यह था कि विग्रह की स्थापना आवासीय परिसर की सीमा के भीतर नहीं, बल्कि उसी उद्देश्य से रिक्त भूखंड पर निर्मित एक पृथक भवन में की गई थी। हम यह नहीं कहते कि ऐसा तथ्य अपने आप में प्रश्न का निर्णायक है। यह तथ्य कि मंदिर आवासीय भवन के बाहर है, उसे सार्वजनिक मंदिर माने जाने के पक्ष में केवल एक परिस्थिति है, विशेषतः मद्रास (मालाबार को छोड़कर) में; तथापि, बंगाल में ऐसे निजी मंदिर भी हैं जो दाताओं के आवासीय भवनों के बाहर निर्मित होते हैं (देखें, धार्मिक एवं परोपकारी न्यासों का हिन्दू विधि, स्वर्गीय डॉ. बी. के. मुखर्जी द्वारा टैगोर विधि व्याख्यान, 1952 संस्करण, पृष्ठ 188)। हमारे समक्ष के वाद में, दोनों मंदिर आवासीय भवनों के बाहर निर्मित किए गए थे, किन्तु वह केवल प्रासंगिक परिस्थितियों में से एक है। हमें न्यास विलेख की उसकी सभी धाराओं के संदर्भ में व्याख्या करनी है और इस प्रकार व्याख्यायित

करने पर हमें कोई संदेह नहीं है कि अधिरोपित न्यास एक सार्वजनिक बंदोबस्ती का गठन करते हैं। इस संबंध में एक अन्य बिंदु भी ध्यान देने योग्य है। वर्तमान वाद में न्यास विलेख अंग्रेजी प्रारूप में है और न्यासकर्ता ने संपत्तियाँ न्यासियों को हस्तांतरित की हैं ताकि वे उन्हें धर्म और परोपकार के कुछ विशिष्ट उद्देश्यों हेतु धारण करें; हमारे मत में यह निर्णायक नहीं है, किन्तु फिर भी यह उस रीति से एक महत्वपूर्ण विचलन है जिसमें सामान्यतः निजी धार्मिक न्यास की जाती है।

अब इस न्यास से संबंधित कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक निर्णय, चारुसीला दासी के संदर्भ में उल्लेख करना आवश्यक है। उस वाद में विचारार्थ प्रश्न 1938-39 के लेखा वर्ष हेतु इस न्यास संपदा की आय पर आयकर निर्धारण का था। न्यासियों पर न्यास की समस्त आय के संबंध में निर्धारण किया गया था। न्यासियों ने उक्त निर्धारण के विरुद्ध अपील की और तर्क दिया कि सम्पूर्ण न्यास सार्वजनिक, धार्मिक तथा परोपकारी उद्देश्यों हेतु है और सम्पूर्ण आय आयकर अधिनियम की धारा 4 की उपधारा 3 के उपबंध (1) के अंतर्गत आती है। आयकर आयुक्त का तर्क यह था कि न्यास एक निजी धार्मिक न्यास से अधिक कुछ नहीं है और आय, उस भाग को छोड़कर जो चिकित्सालय और औषधालय हेतु समर्पित किया जाना था तथा जिस पर उपबंध (1) का उत्तरार्द्ध लागू होता था, जनसाधारण के लाभ हेतु उपगत नहीं होती थी। तदनुसार उच्च न्यायालय को संदर्भित किया गया और यह प्रश्न विनिर्धारित किया गया कि क्या न्यास विलेख की समुचित व्याख्या पर न्यास की वह आय, जो महिला चिकित्सालय के निर्माण एवं अनुरक्षण हेतु प्रयुक्त नहीं की गई थी, भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 4(3) के प्रावधानों के अधीन कर से मुक्त थी। उच्च न्यायालय के समक्ष यह इंगित किया गया कि लेखा वर्ष के दौरान न्यास की आय का कोई भाग चिकित्सालय एवं औषधालय हेतु समर्पित नहीं किया गया था और यह स्वीकार किया गया कि आय का वह भाग जो उन संस्थाओं हेतु समर्पित किया जाएगा, छूट

उपबंध के अंतर्गत आएगा। ऐसा हुआ कि कलकत्ता उच्च न्यायालय में आयकर संदर्भ में न्यासियों की ओर से वाद का तर्क प्रस्तुत करने वाले विद्वान अधिवक्ता वही अधिवक्ता हैं जिन्होंने हमारे समक्ष श्रीमती चारुसीला दासी की ओर से वाद का तर्क प्रस्तुत किया है। वर्तमान तर्क यह है कि न्यास अपनी संपूर्णता में एक निजी धार्मिक न्यास है।

आयकर के संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने इस तर्क के समर्थन में कि न्यास विलेख से जैसा सम्पूर्ण न्यास अभिज्ञात होता है वह सार्वजनिक प्रकृति का था, ग्यारह परिस्थितियों का उल्लेख किया गया था। न्यायमूर्ति जेंटल, जिनसे न्यायमूर्ति ऑरमंड सहमत थे, ने अभिनिर्धारित किया कि न्यास विलेख की समुचित व्याख्या पर न्यास की वह आय, जो महिला चिकित्सालय के निर्माण एवं अनुरक्षण के प्रयोजन हेतु प्रयुक्त नहीं की गई थी, भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 4(3) के प्रावधानों के अधीन कर से मुक्त नहीं थी। यह निर्णय, यह तत्काल कहा जाना चाहिए, वर्तमान उत्तरदाता का पूर्णतः समर्थन नहीं करता है। जहाँ तक चिकित्सालय तथा औषधालय का संबंध है, न्यास को सार्वजनिक न्यास अभिनिर्धारित किया गया था। हमारा मत है कि न्यास विलेख के उन मुख्य उपबंधों को दृष्टिगत रखते हुए जिनका हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं, ईश्वर श्रीगोपाल देवता तथा श्री बालानंद ब्रह्मचारी की प्रतिमा के पक्ष में सृजित न्यास भी सार्वजनिक प्रकृति के हैं।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष जिन बिंदुओं पर बल दिया गया था उनमें से एक देवता तथा प्रतिमा को अर्पित किए जाने वाले "प्रणामी" तथा परिलाभ के संबंध में प्रावधान था। उच्च न्यायालय ने कहा :

"यह प्रावधान जनसाधारण के पक्ष में किसी न्यास की सृष्टि का संकेत नहीं करता, बल्कि इसके विपरीत यह किसी भी व्यक्ति के अधिकार का निषेध करता है, जिसमें जनसाधारण का

कोई भी सदस्य सम्मिलित होगा, कि उसे प्रणामियों पर कोई अधिकार हो। अपने शब्दों में यह विलेख इस बात का निषेध करता है कि जनसाधारण को कोई लाभ प्रदान किया गया है।"

उपर्युक्त टिप्पणियाँ हमें, आदर सहित, भ्रांत धारणा पर आधारित प्रतीत होती हैं। जब जनसाधारण का कोई सदस्य किसी देवता को अर्पण करता है, तो वह अपने अर्पण पर कोई अधिकार बनाए नहीं रखता। जो कुछ वह अर्पित करता है वह देवता का हो जाता है। जब हम जनसाधारण अथवा उसके किसी पर्याप्त वर्ग के अधिकार की बात करते हैं, तो हमारा आशय पूजा के अधिकार अथवा देवता की उपासना में अर्पण करने के अधिकार से होता है, न कि अर्पण किए जाने के पश्चात् उन अर्पणों पर अधिकार से। न्यास विलेख के अन्य उपबंधों के संबंध में भी हमारा मत उन विद्वान न्यायमूर्तियों के मत से भिन्न है जिन्होंने आयकर संदर्भ का निर्णय किया था। हम पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में अपना मत स्पष्ट कर चुके हैं और उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। न्यास विलेख की व्याख्या पर हमारा निष्कर्ष यह है कि वह सार्वजनिक प्रकृति का एक धार्मिक एवं परोपकारी न्यास सृजित करता है।

अब हम द्वितीय बिंदु के विचार की ओर अग्रसर होते हैं। अधिनियम की धारा 3 इस प्रकार कहती है—

"यह अधिनियम सभी धार्मिक न्यासों पर लागू होगा, चाहे वे इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व सृजित किए गए हों अथवा पश्चात्, जिनकी संपत्ति का कोई भाग बिहार राज्य में स्थित हो।"

हमारे समक्ष उत्तरदाता की ओर से प्रस्तुत तर्क यह है। संविधान के अनुच्छेद 245 के अधीन संसद भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकती है और किसी राज्य की विधायिका सम्पूर्ण राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकती है। उक्त अनुच्छेद का खंड (2) आगे यह भी उपबंधित करता है कि संसद द्वारा बनाई गई कोई विधि

केवल इस आधार पर अवैध नहीं मानी जाएगी कि उसका बाह्य-प्रादेशिक प्रवर्तन होगा। अनुच्छेद 246 विधायी शक्ति का वितरण करता है;

संसद को उन विषयों के संबंध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है जो तथाकथित संघ सूची में विनिर्दिष्ट हैं; संसद तथा राज्य की विधायिका दोनों को उन विषयों के संबंध में विधि बनाने की शक्ति है जो समवर्ती सूची में विनिर्दिष्ट हैं; राज्य की विधायिका को ऐसे राज्य अथवा उसके किसी भाग के लिए उन विषयों के संबंध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है जो राज्य सूची में विनिर्दिष्ट हैं। समवर्ती सूची की मद 28 है—

"परोपकार तथा परोपकारी संस्थाएँ, परोपकारी एवं धार्मिक बंदोबस्तियाँ तथा धार्मिक संस्थाएँ।"

उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि संविधान के अनुच्छेद 245 और 246 के प्रावधानों को समवर्ती सूची की मद 28 के साथ पठित करने पर, जिस बिहार विधायिका ने अधिनियम पारित किया उसे ऐसी विधि बनाने की शक्ति नहीं थी जिसका प्रवर्तन बिहार राज्य के बाहर हो; वह आगे तर्क देते हैं कि धारा 3 के अधीन अधिनियम को उन सभी धार्मिक न्यासों पर लागू किया गया है, चाहे वे अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व सृजित किए गए हों अथवा पश्चात्, जिनकी संपत्ति का कोई भाग बिहार राज्य में स्थित हो; अतः अधिनियम ऐसी धार्मिक संस्था पर भी लागू होगा जो बिहार के बाहर स्थित है, यद्यपि उसकी संपत्ति का एक छोटा भाग उस राज्य में स्थित हो। तर्क यह है कि ऐसा प्रावधान बिहार विधायिका की शक्ति के प्रतिकूल है, और केवल संसद ही ऐसी विधि बना सकती है जो विभिन्न राज्यों में संपत्ति रखने वाली धार्मिक संस्थाओं पर लागू हो। वैकल्पिक रूप से यह तर्क दिया गया है कि यदि अधिनियम बिहार स्थित ऐसी धार्मिक संस्था पर लागू भी होता है जिसकी संपत्ति का एक छोटा भाग बिहार में है, तब भी

अधिनियम के प्रावधान संस्था की उस संपत्ति पर लागू नहीं हो सकते जो बिहार के बाहर स्थित है, जैसे वर्तमान वाद में कलकत्ता स्थित संपत्तियाँ।

अधिनियम की धारा 1(2) तथा 3 को प्रस्तावना के साथ पठित करते हुए अधिनियम के प्रवर्तन की सीमा का सर्वप्रथम निर्धारण करना आवश्यक है। प्रस्तावना इस प्रकार है :

"चूँकि बिहार राज्य में हिन्दू धार्मिक न्यासों के बेहतर प्रशासन तथा ऐसे न्यासों से संबंधित संपत्तियों के संरक्षण एवं संरक्षण का उपबंध करना समीचीन है।"

प्रस्तावना से स्पष्ट है कि अधिनियम का उद्देश्य बिहार राज्य में हिन्दू धार्मिक न्यासों के बेहतर प्रशासन का उपबंध करना है। धारा 1(2) उपबंधित करती है कि अधिनियम का विस्तार बिहार राज्य के संपूर्ण क्षेत्र तक होगा, और धारा 3 का उद्धरण हम पूर्व में कर चुके हैं। यदि इन दोनों प्रावधानों को प्रस्तावना के संदर्भ में पढ़ा जाए, तो उनका केवल यही अर्थ हो सकता है कि अधिनियम उन मामलों में लागू होता है जिनमें (क) धार्मिक न्यास अथवा संस्था बिहार में स्थित हो, और (ख) जिसकी संपत्ति का कोई भाग बिहार राज्य में स्थित हो। अन्य शब्दों में, अधिनियम के प्रवर्तन हेतु उपर्युक्त दोनों शर्तों का पूर्ण होना आवश्यक है। अब यह सुस्थापित है कि सामान्य उपधारणा यह है कि विधायिका अपनी अधिकारिता का अतिक्रमण करने का आशय नहीं रखती, और यह व्याख्या का एक सुदृढ़ सिद्धांत है कि किसी संप्रभुत्तासंपन्न विधायिका के अधिनियम को, यदि संभव हो, ऐसी व्याख्या दी जानी चाहिए जिससे वह प्रवर्तनीय बने न कि अप्रवर्तनीय; देखें, *हिन्दू महिलाओं के संपत्ति अधिकार अधिनियम, 1937 तथा हिन्दू महिलाओं के संपत्ति अधिकार (संशोधन) अधिनियम, 1938 के संदर्भ में, तथा भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 213 के अधीन विशेष संदर्भ में उल्लिखित वाद, और इस न्यायालय का निर्णय आर. एम. डी. चमारबागवाला बनाम भारत संघ*। तदनुसार, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि धारा 3 अधिनियम को सभी सार्वजनिक धार्मिक न्यासों, अर्थात् सभी सार्वजनिक धार्मिक एवं परोपकारी संस्थाओं, पर

लागू करती है। अधिनियम की धारा 2(1) में निहित परिभाषा उपबंध के अर्थ के अंतर्गत आने वाली, जो बिहार राज्य में स्थित हैं और जिनकी संपत्ति का कोई भाग उस राज्य में है। अन्य शब्दों में, अधिनियम के लागू होने से पूर्व दोनों शर्तों का पूर्ण होना आवश्यक है। यदि अधिनियम की धारा 3 का यही यथार्थ अर्थ है, तो हम नहीं मानते कि अधिनियम का कोई भी प्रावधान बाह्य-प्रादेशिक प्रवर्तन रखता है अथवा बिहार विधायिका की क्षमता एवं शक्ति के परे है। निःसंदेह, बिहार विधायिका को, समवर्ती सूची की मद 28 की शब्दावली का उपयोग करें तो, बिहार राज्य में स्थित "परोपकार, परोपकारी संस्थाएँ, परोपकारी एवं धार्मिक बंदोबस्तियाँ तथा धार्मिक संस्थाएँ" के संबंध में विधि बनाने की शक्ति है। अतः प्रश्न इस तक सीमित हो जाता है कि इस प्रकार विधि बनाते समय क्या उसे ऐसी न्यास संपत्ति को प्रभावित करने की शक्ति है जो बिहार के बाहर स्थित हो सकती है किन्तु बिहार में स्थित न्यास से संबंधित है? हमारे मत में, इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि न्यास के अधीन हित के संबंध में लाभार्थियों का एकमात्र अधिकार यह होता है कि न्यास का उसके उपबंधों के अनुसार समुचित प्रशासन हो, और यह अधिकार सामान्यतः केवल उसी स्थान पर प्रवर्तित किया जा सकता है जहाँ न्यास अथवा धार्मिक संस्था स्थित है अथवा जहाँ न्यासी निवास करते हैं : देखें, डाइसीज़ कॉन्फ्लिक्ट ऑफ लॉज़, सातवाँ संस्करण, पृष्ठ 506। अधिनियम इससे अधिक कुछ करने का अभिप्राय नहीं रखता। इसका उद्देश्य, जैसा कि प्रस्तावना में अभिलिखित है, बिहार राज्य में हिन्दू धार्मिक न्यासों के बेहतर प्रशासन तथा उनसे संबंधित संपत्तियों के संरक्षण का उपबंध करना है। इस उद्देश्य को न्यासियों पर व्यक्तिशः नियंत्रण का प्रयोग करके प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

न्यास बिहार में स्थित होने के कारण राज्य को उस पर तथा उसके न्यासियों अथवा उनके सेवकों एवं अभिकर्ताओं पर, जिन्हें न्यास का प्रशासन करने हेतु बिहार में होना आवश्यक है,

विधायी शक्ति प्राप्त है। अतः वास्तव में अधिनियम के बाह्य-प्रादेशिक प्रवर्तन का कोई प्रश्न नहीं उठता। किसी भी स्थिति में, यह परिस्थिति कि वे मंदिर जहाँ देवताओं की स्थापना की गई है बिहार में स्थित हैं, तथा यह कि चिकित्सालय और परोपकारी औषधालय बिहार में स्थित हिन्दू जनसाधारण के लाभ हेतु बिहार में स्थापित किए जाने हैं, बिहार की विधायिका को ऐसे न्यास के संबंध में विधि बनाने में सक्षम करने के लिए पर्याप्त प्रादेशिक संबंध प्रदान करती है। इस न्यायालय ने प्रादेशिक संबंध अथवा संबंधता के सिद्धांत को आयकर विधायन, विक्रयकर विधायन तथा जुआ पर कर अधिरोपित करने वाले विधायन पर लागू किया है। *टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार* [(1)] *राज्य* में पूर्ववर्ती वादों की समीक्षा की गई थी और यह इंगित किया गया था कि प्रादेशिक संबंध की पर्याप्तता में दो तत्वों का विचार सम्मिलित है, अर्थात् (क) संबंध वास्तविक हो, काल्पनिक नहीं, और (ख) जो दायित्व अधिरोपित किया जाना अपेक्षित है वह उस संबंध से प्रासंगिक हो। यह विवादित नहीं किया जा सकता कि यदि धार्मिक न्यास स्वयं बिहार में स्थित है और न्यासी वहाँ कार्य करते हैं, तो धार्मिक संस्था और उससे संबंधित संपत्ति के मध्य संबंध वास्तविक है, काल्पनिक नहीं; वास्तव में धार्मिक संस्था तथा उससे संबंधित संपत्ति एक समन्वित समग्र का निर्माण करती हैं और एक को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। अतः यदि न्यासियों पर कोई दायित्व अधिरोपित किया जाता है, तो ऐसा दायित्व न्यास संपत्ति को प्रभावित करेगा। यह सत्य है कि *टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लिमिटेड* के वाद में इस न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी :

"हमारे लिए इस अवसर पर यह व्यापक प्रतिपादन करना आवश्यक नहीं है कि संबंधता का सिद्धांत, विधायन के सिद्धांत के रूप में, सभी प्रकार के विधायन पर लागू होता है या नहीं। वर्तमान विचाराधीन बिंदु के निस्तारण हेतु इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस न्यायालय को

इसके प्रवर्तन को केवल आयकर विधायन तक सीमित रखने का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं मिला है, बल्कि उसने इसे विक्रयकर तथा जुआ पर कर तक विस्तारित किया है।"

हम ऐसा कोई कारण नहीं देखते कि *बम्बई राज्य बनाम आर. एम. डी. चमारबागवाला* में अनुसरित सिद्धांतों का वर्तमान वाद में अनुसरण क्यों न किया जाए। *आर. एम. डी. चमारबागवाला* के वाद में यह पाया गया था कि पुरस्कार प्रतियोगिता का आयोजक उत्तरदाता बम्बई राज्य के बाहर स्थित था; जिस पत्र के माध्यम से पुरस्कार प्रतियोगिता संचालित की जाती थी वह बम्बई राज्य के बाहर मुद्रित और प्रकाशित होता था, किन्तु उसका बम्बई राज्य में व्यापक प्रसार था और यह पाया गया था कि "वे सभी गतिविधियाँ जिन्हें साधारणतः जुआरी से करने की अपेक्षा की जाती है" अधिकांशतः, यदि पूर्णतः नहीं, तो बम्बई राज्य में होती थीं। यह अभिनिर्धारित किया गया कि ये परिस्थितियाँ पर्याप्त प्रादेशिक संबंध का गठन करती हैं, जिससे बम्बई राज्य अपनी सीमाओं के भीतर होने वाले जुए पर कर अधिरोपित करने का अधिकारी था और उस विधि को बाह्य-प्रादेशिकता के आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता था। हमारा मत है कि वही सिद्धांत वर्तमान वाद में लागू होते हैं और चूँकि धार्मिक न्यास स्वयं बिहार में स्थित है तथा न्यासी वहाँ कार्य कर रहे हैं, अधिनियम लागू होता है और अधिनियम के प्रावधानों को बाह्य-प्रादेशिकता के आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता।

अब हम उन कुछ निर्णयों पर विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं जिन पर उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने अवलंबन किया है। ये हैं—(1) सरदार गुरदयाल सिंह बनाम फरीदकोट के राजा; (2) बंगाल वक्फ आयुक्त बनाम नरसिंह चन्द्र दॉ एण्ड कंपनी; (3) मदनगोपाल बागला बनाम लछमीदास; तथा (4) महाराज किशोर खन्ना बनाम राजा राम सिंह। हमारे मत में, ये निर्णय प्रासंगिक नहीं हैं, क्योंकि वे सर्वथा भिन्न प्रश्नों से संबंधित थे। सरदार गुरदयाल सिंह के वाद में फरीदकोट न्यायालय ने ऐसे प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय धनादेश पारित किया था जो फरीदकोट

का कोषाध्यक्ष रह चुका था, किन्तु वाद के समय वह उस पद पर नहीं था और झिंद में निवास करता था, जिस राज्य का वह अधिवासित प्रजा था; यह अभिनिर्धारित किया गया कि उक्त आदेश अंतरराष्ट्रीय विधि के अधीन शून्य था। निर्णय का अनुपात इस प्रकार लॉर्ड सेल्बोर्न द्वारा व्यक्त किया गया था :

"प्रादेशिक अधिकारिता (विशेष अपवादों सहित) उन सभी व्यक्तियों पर लागू होती है जो किसी क्षेत्राधिकार के भीतर स्थायी अथवा अस्थायी रूप से निवास करते हैं, जब तक वे उसके भीतर रहते हैं; किन्तु उनके उस क्षेत्र से चले जाने तथा किसी अन्य स्वतंत्र देश में निवास करने के पश्चात् वह उनका अनुसरण नहीं करती। ... ऐसे वैयक्तिक वाद में, जिस पर अधिकारिता के इन आधारों में से कोई भी लागू नहीं होता, किसी विदेशी न्यायालय द्वारा अनुपस्थिति में पारित आदेश, जिसकी अधिकारिता के अधीन प्रतिवादी ने किसी भी प्रकार स्वयं को प्रस्तुत नहीं किया है, अंतरराष्ट्रीय विधि के अनुसार पूर्णतः शून्य होता है।"

बंगाल वक्फ आयुक्त बनाम नरसिंह चन्द्र दॉ एण्ड कंपनी का निर्णय बंगाल वक्फ अधिनियम की धारा 70 की व्याख्या पर आधारित था, जिसमें अधिनियम की धारा 3 के समान एक प्रावधान भी था। बंगाल वक्फ अधिनियम की धारा 70 के अनुसार किसी वक्फ संपत्ति के विक्रय से पूर्व वक्फ आयुक्त को सूचना देना आवश्यक था, और प्रश्न यह था कि क्या असम का कोई न्यायालय ऐसी सूचना भेजने के लिए बाध्य था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि बंगाल अधिनियम असम पर लागू नहीं होता और धारा 70 बंगाल अधिनियम की अन्य धाराओं से भिन्न श्रेणी में आती है। निर्णय का अनुपात इस प्रकार स्पष्ट किया गया :—

"जहाँ तक आयुक्त की स्थिति का संबंध है, वह बंगाल अधिनियम द्वारा इस प्रकार प्रदत्त की गई है कि उसका प्रवर्तन प्रांत के बाहर भी हो। अतः आयुक्त बंगाल अधिनियम की धारा 72 अथवा 73 के अधीन प्रांत के बाहर स्थित न्यायालयों में वाद दायर कर सकता है। किन्तु धारा

70 भिन्न श्रेणी में आती है, क्योंकि वह कुछ परिस्थितियों में न्यायालय पर आयुक्त को सूचना निर्गत करने का दायित्व अधिरोपित करती है। ..... धारा 70(1) किसी वक्फ संपत्ति आदि के संबंध में वाद अथवा कार्यवाही का उल्लेख करती है, और यदि वह वक्फ संपत्ति प्रांत के बाहर स्थित है, जिससे उस पर अधिकारिता रखने वाला न्यायालय भी प्रांत के बाहर है, तब अधिनियम अपने विस्तार से परे, अर्थात् बंगाल प्रांत के बाहर, प्रवर्तित नहीं हो सकता।"

मदनगोपाल बागला बनाम लछमीदास का निर्णय तथा महाराज किशोर खन्ना बनाम राजा राम सिंह का निर्णय—दोनों ही संयुक्त प्रांत भारग्रस्त संपदा अधिनियम (संयुक्त प्रांत अधिनियम 1934 का 25) के कुछ प्रावधानों की व्याख्या से संबंधित थे। पूर्ववर्ती वाद में निर्णयार्थ सीमित प्रश्न यह था कि क्या कलकत्ता उच्च न्यायालय की मौलिक पीठ के आदेश के अधीन डिक्रीधारक संयुक्त प्रांत भारग्रस्त संपदा अधिनियम, 1934 के अधीन विशेष न्यायाधीश, बनारस के समक्ष संपन्न कुछ कार्यवाहियों के कारण आदेश के निष्पादन से वंचित था। इसका उत्तर यह दिया गया कि आदेशधारक इस प्रकार वंचित नहीं था और निर्णय संयुक्त प्रांत भारग्रस्त संपदा अधिनियम, 1934 की धारा 18 को उस अधिनियम की धारा 7, 13 तथा 14(7) के साथ पठित करते हुए उसकी व्याख्या पर आधारित था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि विशेष न्यायाधीश को दीवानी तथा राजस्व न्यायालयों के स्थान पर प्रदत्त की जाने वाली अनन्य अधिकारिता, जैसा कि धारा 7 से इंगित है, केवल उन ऋणों तक विस्तारित थी जो प्रांत के भीतर न्यायालयों के माध्यम से प्रवर्तनीय थे और धारा 10 में प्रयुक्त "ऋणदाता" शब्द उन्हीं तक सीमित माना जाना चाहिए जिन्हें अपने अधिकार केवल ऐसे न्यायालयों के माध्यम से प्रवर्तित करने होते। पटना वाद में निर्णयार्थ प्रश्न यह था कि क्या संयुक्त प्रांत भारग्रस्त संपदा अधिनियम, 1934 की धारा 14(7) की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि विशेष न्यायाधीश का आदेश राज्य विधायिका की प्रादेशिक अधिकारिता से परे भी सक्षम अधिकारिता वाले दीवानी न्यायालय के आदेश के रूप में

माना जाए। यह अभिनिर्धारित किया गया कि बनारस के विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश का संयुक्त प्रांत की प्रादेशिक सीमाओं के बाहर किसी दीवानी न्यायालय के आदेश जैसा प्रभाव नहीं था और बिहार के पूर्णिया के अवर न्यायाधीश को ऐसे आदेश का निष्पादन करने अथवा आदेश-ऋणी की पूर्णिया स्थित संपत्तियों को आदेश के निष्पादन में कुर्क करने का निर्देश देने की कोई अधिकारिता नहीं थी। जैसा कि हम पूर्व में कह चुके हैं, ये निर्णय सर्वथा भिन्न प्रश्न से संबंधित हैं, अर्थात् बंगाल वक्फ अधिनियम अथवा संयुक्त प्रांत भारग्रस्त संपदा अधिनियम की कुछ धाराओं की समुचित व्याख्या से। हमारे समक्ष स्थित प्रश्न अधिक सामान्य प्रकृति का है और उपर्युक्त निर्णय उस प्रश्न के समाधान के लिए कोई प्राधिकार नहीं हैं।

इस न्यायालय के एक निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया है (याचिका संख्या 234/1953, जिसका निर्णय 18 मार्च, 1953 को किया गया)। उस वाद में भी एक समान प्रश्न उत्पन्न हुआ था जहाँ बनारस में स्थित एक मठ के प्रमुख ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन बम्बई राज्य तथा उस राज्य के धर्मार्थ आयुक्त के विरुद्ध परमादेश रिट की प्रकृति की रिट हेतु याचिका दायर की थी, ताकि उन्हें याचिकाकर्ता के विरुद्ध बम्बई सार्वजनिक न्यास अधिनियम, 1950 के प्रावधानों को प्रवर्तित करने से विरत रहने का निर्देश दिया जाए, इस आधार सहित कि बम्बई अधिनियम का बनारस स्थित उस मठ अथवा उस मठ से संबद्ध किसी संपत्ति या उपासना-स्थल पर कोई प्रवर्तन नहीं हो सकता। याचिका की सुनवाई के दौरान बम्बई राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान महान्यायवादी ने स्पष्ट किया कि बम्बई सरकार अथवा धर्मार्थ आयुक्त की यह कोई मंशा नहीं थी कि बम्बई अधिनियम के प्रावधान राज्य क्षेत्र के बाहर स्थित किसी मठ अथवा धार्मिक संस्था पर लागू किए जाएँ। विद्वान महान्यायवादी ने प्रस्तुत किया कि बम्बई अधिनियम, यदि किसी सीमा तक लागू किया जा सकता है, तो केवल ऐसे धार्मिक शिक्षा अथवा उपासना स्थल पर जो मठ से संबद्ध हो और वास्तव में राज्य क्षेत्र के भीतर स्थित हो।

इन प्रस्तुतियों के दृष्टिगत उक्त बिंदु पर कोई निर्णय नहीं दिया गया। अतः उस वाद को हमारे समक्ष विचाराधीन प्रश्न पर अंतिम निर्णय नहीं माना जा सकता।

उन कारणों से जिन्हें हम पूर्व में व्यक्त कर चुके हैं, अधिनियम चारुसीला न्यास पर लागू होता है जो बिहार में स्थित है और उसके प्रावधानों को बाह्य-प्रादेशिकता के आधार पर अपास्त नहीं किया जा सकता।

परिणामतः, अपील सफल होती है और लागत सहित स्वीकृत की जाती है, दिनांक 5 अक्टूबर, 1953 का उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश अपास्त किए जाते हैं और श्रीमती चारुसीला दासी की याचिका लागत सहित खारिज की जाती है।

अपील स्वीकृत।

---

(1) महंत मोती दास बनाम एस. पी. साही*, पूर्वोक्त, पृष्ठ 563 देखें ।

(2) महंत राम सरूप दासजी बनाम एस. पी. साही*, पूर्वोक्त, पृष्ठ 583 देखें ।

(1) [1958] एस. सी. आर. 1355 ।

(1) [1958] एस. सी. आर. 1355 ।

(2) [1957] एस. सी. आर. 874 ।

(3) (1894) 21 आई. ए. 171, 185 ।

(1) आई. एल. आर. [1939] 1 कलकत्ता 462 ।

(2) आई. एल. आर. [1948] 2 कलकत्ता 455 ।

(3) ए. आई. आर. 1954 पटना 164 ।

(4) (1894) 21 आई. ए. 171, 185 ।

(1) आई. एल. आर. [1948] 2 कलकत्ता 455 ।

(2) ए. आई. आर. 1954 पटना 164 ।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।